# क्यूं आंकते हैं हम बच्चों को कम कर के?

कैरन हैडॉक

**ज़रा विश्वास करके तो देखें बच्चों की क्षमता पर. . . और देखिए फिर उनके चेहरे पर चमक. . . आपकी कक्षा तो बिलकुल बदल ही जाएगी!**

जिन्होंने भी बच्चों को पढ़ाने की कोशिश की है – चाहे वो माता पिता हों या शिक्षक – उनके खाते में सफलता के साथ-साथ असफलता और निराशा भी दर्ज होती है। ऐसे में एक सवाल उठता है कि आखिर इतना मुश्किल क्यों है पढ़ाना?

एक मुख्य समस्या तो यह है कि पढ़ाने वालों का विश्वास बच्चों की क्षमताओं या योग्यताओं पर काफी कम होता है। यह बात मैं यूं ही नहीं कह रही बल्कि एक अभिभावक, एक शिक्षक और एक शिक्षक प्रशिक्षक होने के आधार पर कह रही हूं।

कई बार मैं उस पाठ को लेकर बच्चों (दूसरी, तीसरी या फिर पांचवीं के) के सामने खड़ी होती हूं जो मुझे उन्हें पढ़ाना है। मेरे पास कुछ जानकारी है जो मैं बच्चों को देना चाहती हूं। लेकिन मैं यह जानकारी उन्हें क्यूं देना चाहती हूं? क्योंकि मुझे लगता है कि वे इसके बारे में नहीं जानते; इसे जानने में उन्हें मज़ा आएगा; यह दुनिया के बारे में उनके नज़रिए को विस्तृत करने में मदद करेगी; यह उन्हें बेहतर इंसान बनने में मदद करेगी, भले ही थोड़ा-सा।

लेकिन कभी कभार पढ़ाना शुरू करने से पहले ही मेरे दिमाग में यह ख्याल बुदबुदाना शुरू कर देता है कि शायद उन्हें वह पहले से ही मालूम हो जो मैं उन्हें बताना चाहती हूं। तो उन्हें कुछ बताने की बजाए मैं उनके सामने सवाल रख देती हूं। दस में से

करीब नौ बार मैं पाती हूं कि कक्षा में कम -से-कम कुछ ऐसे बच्चे होते हैं जो उस सवाल का जवाब दे पाते हैं और जवाब उतना ही बेहतर होता है जितना कि मेरा जवाब। और बच्चे जो जवाब देते हैं वो मेरे जवाब से भिन्न होता है लेकिन गलत नहीं होता। कुछ बच्चे तो सवाल को एक मज़ेदार और बिलकुल ही नई दृष्टि से देखते हैं। यहां तक कि वे 'बुद्धू' बच्चे भी – जो किसी कोने में बैठे दूसरे बच्चों और शिक्षकों के ताने सहते रहते हैं – प्रेरित करने पर, कभी-कभार बोल उठते हैं और सवाल को एक बिलकुल ही नई नज़र से देखते हैं। तो इस तरह पूर्व-तैयार मेरा लैक्चर कक्षा में एक मज़ेदार बहस में परिवर्तित हो जाता है। इस बहस में हम सभी का कुछ-न-कुछ योगदान होता है और सभी एक दूसरे से कुछ-न-कुछ सीखते हैं। मुझे यहां यह बताना चाहिए कि अगर कक्षा में बच्चों की संख्या अधिक है तो शायद यह तरीका अख्तियार करना संभव नहीं है। लेकिन मैं इस मामले में सौभाग्यशाली हूं कि मुझे कभी भी 25 बच्चों से अधिक की कक्षा को नहीं पढ़ाना पड़ा है।

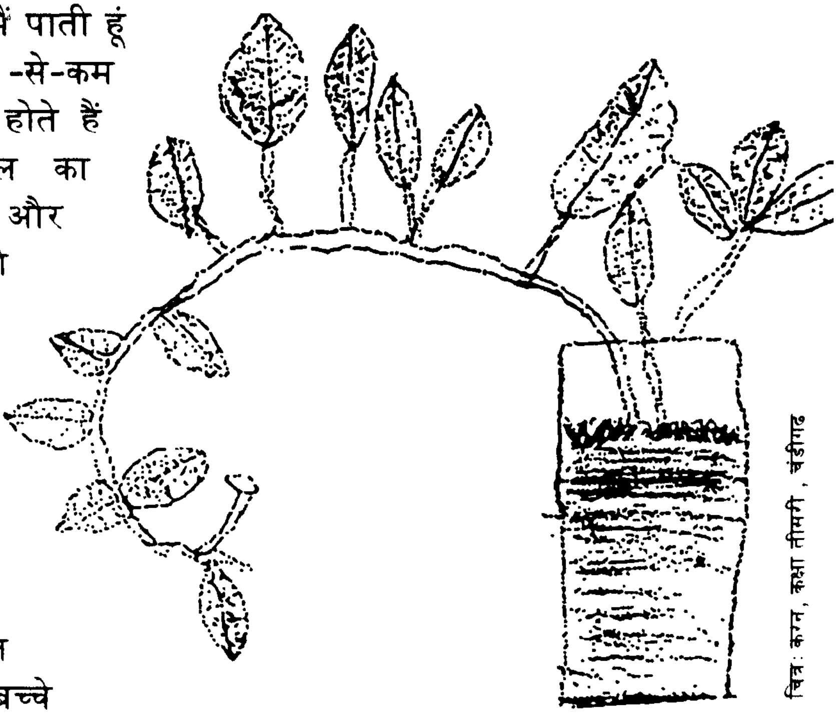
चित्र: करन, कक्षा तीसरी, चंडीगढ़

इस पूरे दौर के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची हूं कि मैं बच्चों को कम करके आंकती हूं। हालांकि मैं बच्चों को ऐसे मौके देने को लेकर काफी सचेत रहती हूं जिसमें वे अपने आपको साबित कर पाएं।

एक बार स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारी के दौरान अचानक ही मुझसे कहा गया कि स्कूल की बाहरी दीवार पर कुछ बच्चों से एक बड़ा चित्र बनवा दूं। और तो और इस काम को खत्म भी उसी दिन करना था। इस आदेश ने तो मेरी उस दिन की कार्ययोजना

को गड़बड़ कर ही दिया। लेकिन फिर भी यह आग्रह काफी दिलचस्प लगा।

मुझे पूरे मामले में सिर्फ एक ही दिक्कत थी कि दीवार को इनेमल पेंट से पोता जाना था और बच्चों को इस पेंट से काम करने का पहले कोई भी अनुभव नहीं था। सभी बच्चे कक्षा दो और तीन के थे। मैंने अपनी कक्षा के छह-सात बच्चों को बुलाया और उनसे कहा कि उन्हें दीवार पर एक चित्र पेन्ट करना है। मैंने उन्हें एप्रन (लबादे) दिए और बताया कि बड़े ब्रुश को पेन्ट में डुबाने के बाद डिब्बे के किनारे से लगाकर अतिरिक्त पेन्ट को कैसे साफ किया जाता जाता है। साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि पेंट की बूंदों को दीवार पर फैलने (बहने) देने से कैसे बचाया जा सकता है।

मैंने दीवार पर एक भी निशान नहीं बनाया, न ही बच्चों से यह कहा कि तुम यह बनाओ या वह। शुरुआत में मैंने उन्हें सिर्फ इतनी सी सलाह दी कि जो भी बनाना बड़ा बनाना क्योंकि दीवार काफी बड़ी है। जब बच्चे चित्र को करीबन आधा बना चुके थे तो कला की ही एक अन्य शिक्षक वहां से गुज़री। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैंने चित्र को दीवार पर पहले पेंसिल से बना दिया था। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैंने कुछ नहीं किया लेकिन मुझे नहीं लगा कि उन्होंने मेरी बात पर यकीन किया हो।

लेकिन किसी तरह, बिना मेरी मदद लिए बच्चों ने दीवार पर जो चित्र बनाया वह किसी भी इंसान को काफी अच्छा लगता। अगर अपनी कहूं तो मुझे तो यह बेहतरीन ही लगा। दिखने में तो यह बिल्कुल साफ समझ में आता था कि इसे बच्चों ने बनाया है, न कि किसी वयस्क ने। लेकिन मेरी राय में तो यह बच्चों वाली बात ही थी जो इसे बिल्कुल अलग और मौलिक बनाती थी।

अगर अपने दिल की बात बताऊं तो शुरुआत में तो मैं थोड़ा आशंकित थी कि बच्चे दीवार का कबाड़ा भी कर सकते हैं। मैं इन बच्चों को पिछले कुछ महीनों से हफ्ते में एक बार कला का विषय पढ़ा रही थी। मैंने पाया था कि कुछ बच्चे तो चित्र बनाने के मामले में काफी सृजनात्मक थे।

अगर मैं इन बच्चों को आम ढर्रे से कला पढ़ा रही होती तो शायद मुझे इनकी योग्यता के बारे में जानकारी नहीं होती। लेकिन मेरा तरीका थोड़ा भिन्न था। मेरे इस तरीके पर स्कूल के कुछ अन्य शिक्षक भी गौर करते रहते थे। एक शिक्षक ने तो एक बार मुझसे पूछा था कि क्या मैं बोर्ड पर कभी कोई चित्र बनाती हूं? मैंने इस बारे में थोड़ा सोचा और पाया कि मैंने तो बच्चों को बोर्ड पर कभी कोई भी चित्र बनाकर नहीं दिखाया।

लेकिन मैं बच्चों से प्रायः यह आग्रह

करती रहती थी कि कभी कॉपी (नकल) मत करो। अगर मुझे कॉपी चाहिए तो मैं फोटोकॉपी की दुकान पर जाकर करवा लूंगी। मैं तो उनसे कहती कि तुममें से हर कोई वैसा चित्र बनाए जैसा कि दुनिया में अभी तक किसी ने नहीं बनाया हो। मैं उन्हें हमेशा कोई न कोई चित्र दिखाती रहती थी लेकिन उनके बनाना शुरू करने से पहले इन्हें हटा लिया करती थी।

कला के किसी गंभीर विद्यार्थी के लिए कॉपी करना निश्चित तौर पर एक काफी उपयोगी अभ्यास हो सकता है। लेकिन इससे भी कहीं महत्वपूर्ण है कि बच्चों को अपनी सृजनात्मकता दिखाने के मौके दिए जाएं, उन्हें मज़ा लेने दिया जाए, उन्हें अपने आपको कला के माध्यम से व्यक्त करने के मौके दिए जाएं। कॉपी करना उनकी इस प्रतिभा को खत्म कर देगा।

कभी-कभार मैं बच्चों से किसी चीज़ को देखने को कहती हूं और कहती हूं कि बनाओ जो तुम देख रहे हो। वे एक दूसरे को काफी गौर से देखते हुए एक-दूसरे का पोर्ट्रेट बनाते हैं। वे जानवरों की तस्वीरें बनाते हैं, उन प्लास्टिक के खिलौनों को देखते हुए जो मैंने उन्हें दिए हैं। ऐसी तस्वीरें बनाते हैं जिसमें कोई रेखा नहीं होती। वो सिर्फ काले सफेद का इस्तेमाल करके चित्र बनाते हैं। वे सीधे-सीधे स्केच पेन से चित्र बनाते हैं जबकि उन्होंने पेंसिल का भी इस्तेमाल नहीं किया होता। वे संगीत से प्रेरित होकर गूढ़

चित्र: शान्ता, कक्षा तीसरी, चंडीगढ़

चित्र बनाते हैं। वे बिना स्केल उपयोग किए सीधी लाइनें खींच देते हैं।

उन्होंने यह सब चीज़ें पहले कभी नहीं की थीं क्योंकि कला के उनके शिक्षक ने उन्हें कभी भी यह सब कर पाने के योग्य नहीं माना। उनसे कई बार कहा जा चुका है कि तुम्हारा काम बिलकुल भी अच्छा नहीं है और यह बात उनके दिमाग में बैठ चुकी है – कागज़ पर एक भी निशान बनाए बिना या फिर कुछ बनाया उसे रबर से मिटाया, फिर बनाया और मिटाया . . .वे कहते हैं यह तो मुझसे नहीं हो पाएगा। इसे तो आप कर दो।

लेकिन आज तक मैंने किसी भी विद्यार्थी की कॉपी पर कुछ भी नहीं बनाया है – न तो शुरुआत में उन्हें मदद करने के लिए और न ही अंत में तस्वीर को ठीक करने के लिए। मैं हर बार उनसे कहती हूं कि तुम इसे कर सकते हो, मैं जानती हूं कि तुम इसे कर सकते हो। मैं उनसे कहती हूं कि चीज़ों को गौर से देखो और फिर जो भी तुमने देखा है, जैसा देखा है उसे बनाओ। जैसे किसी का पोर्ट्रेट बनाते समय मैं उनसे कहती 'क्या तुमने उसके कंधों को देखा है? कैसे मुड़ते हैं वो? ऐसे ही मोड़ को कागज़ पर बनाओ।'

कला के मामले में बच्चों को जितनी कम-से-कम शिक्षा दी जाए उतना ही आंसान होता है उनके लिए खुद प्रयास करके कुछ बनाना।

मुझे अभी तक कोई भी बच्चा ऐसा नहीं मिला है जो अपने आप कोई चित्र नहीं बना पाया हो।

वैसे सृजनात्मक लेखन, विज्ञान, कविता और सामाजिक अध्ययन को लेकर भी मेरे अनुभव ऐसे ही रहे हैं। जब भी मैं बच्चों को मौका देती हूं और ज़ोर देती हूं कि वे अपने आप ही सोचें तो वे मेरी उम्मीद को पूरा करते हैं।

कक्षा में मेरा सबसे पसंदीदा हिस्सा होता है बच्चों के चेहरों पर खुशी की उत्तेजना देख पाना – उस समय जब कि उन्हें लगता है कि वो खुद अपना काम कर सकते हैं और जब वो मुझे अपना काम दिखाते हैं। बिल्कुल खुशी से कूदते हुए और मैं उन्हें अपनी टिप्पणी देती हूं जो उनका उत्साह बढ़ाने वाली होती है। और एक शिक्षक को बच्चों के ऐसे समूह के अलावा क्या चाहिए, जिसको अपना काम करने में इतना मज़ा आता है कि वे अंत में भी और कागज़ देने का आग्रह करते हैं ताकि वे और चित्र बना सकें, आग्रह करते हैं कि उन्हें और मौके दिए जाएं, ताकि वे और कविताएं लिख सकें या और कहानियां सुना सकें।

---

**कैरन हैडॉक:** स्वतंत्र चित्रकार; चंडीगढ़ की एक शाला में अध्यापन कार्य कर रही हैं। बायो-फिज़िक्स में शोधकार्य।